विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१
पोस्टल रजि. नं. NS (M)-16/85

वर्ष १५ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२९ • भाद्रपद पूर्णिमा [शक] • दि. २८-९-१९८५ • अंक ४

उद्‌बोधन

मेरे प्यारे साधक/साधिकाओं !

आओ, अपना सुख बांटें !

हमने जीवन भर लोगों को कितना दुख बांटा है रे! कितना दुख बांटा है रे!

अपनी ही मूर्खता से जब-जब मन में विकार पैदा किया तब-तब मन को दौर्मनस्यता से ही तो भरा और केवल मन से ही नहीं, वाणी और काया से भी ऐसे दुष्कर्म कर गये जिनसे लोग दुखी हुए, संत्रस्त हुए, संतापित हुए। अरे! कितनों के दुखों का कारण बने हम! कितनों की व्याकुलता का कारण बने हम! दुःख ही दुःख तो बांटा लोगों को हमने!

अब अपना कोई पुराना पुण्य जागा और उसी की वजह से यह अनमोल धर्म, सार्वजनीन धर्म, संप्रदाय-विहीन धर्म, मंगलकारी धर्म-रत्न प्राप्त हुआ। इस धर्म संपत्ति ने कितना संपन्न बना दिया हमें! कितनी विपन्नता धुल गई हमारी! कितने विकारों से मुक्ति मिली हमें! कितने दुखों से छुटकारा मिला हमें। अप्रिय से अप्रिय परिस्थिति में भी मुस्कराना आ गया हमें! मन में सब के प्रति अनंत मैत्री और करुणा की ऊर्मियां लहराने लगीं! जीवन धन्य हो उठा। अरे, यही तो सुख है! यही तो सच्चा सुख है!!

आओ, बांटें ऐसा सुख सबको। ऐसा सुख तो सब को मिले। ऐसा धर्म तो सबको मिले। जगत में कोई क्यों दुखियारा रहे! सब अपने-अपने विकारों से मुक्त हो जायें। सब के मन की गांठें खुल जाँय। सब के मन की मलीनता दूर हो जाय। सभी निर्वैर हों! सभी निर्भय हों! सभी निरामय हों! सभी निर्विकार हों! सभी निष्पाप हों! सभी निर्वाणलाभी हों!

इसीलिए आओ! सद्‌धर्म के प्रति असीम कृतज्ञता का भाव रखते हुए, अनन्य निष्ठा का भाव रखते हुए, प्राणियों के प्रति असीम मंगल मैत्री रखते हुए, आओ! अपने भले के लिए भी और जन-जन के भले केलिए भी हम सभी मिलकर अपनी सम्मिलित शक्ति लगाएं और ऐसा जीवन जीएँ जिससे अधिक से अधिक लोग सद्‌धर्म की ओर आकर्षित हों! अधिक से अधिक दुखियारे लोग इस सद्‌धर्म-रस का पान कर सकें, और अपने-अपने दुखों से मुक्त हो सकें! इस निमित्त उनकी जितनी सेवा कर सकें, करें! उन्हें जितनी सुविधा प्रदान कर सकें, करें! जितनी सहूलियतें प्रदान कर सकें, करें! उन्हें सही माने में सुखलाभी बनाएं!

आओ, साधकों! अपना सुख बांटें लोगों को। इसी में हमारा भी तो सुख समाया हुआ है।

मंगल मित्र,
स. ना. गो.

धम्म वाणी

दुक्खपत्ता च निद्दुक्खा भयपत्ता च निब्भया।
सोकपत्ता च निस्सोका होन्तु सब्बे'पिपाणिनो ॥

पुब्बाण्ह सुत्त – ॥

ये सभी प्राणी जो दुःखग्रस्त हैं वे सभी दुःखमुक्त हों! जो भयग्रस्त हैं वे भयमुक्त हों! जो शोकग्रस्त हैं वे शोकमुक्त हों!

•

विपश्यना

प्राचीन साधना–आधुनिक संदर्भ

□ रमेश दत्त शर्मा

उत्तरप्रदेश- जिला एटा का एक कस्बा, जलेसर। वहां के चेयरमैन नेमिचंद जैन की गली 'बनारसी कुंज' में खिलंदडी के वे दिन। प्रेस, जहां वीर भारत छपता था। स्कूल, जिसमें मैं मैट्रिक तक पढ़ा। चंदौसी का मेस्टन हॉस्टल, आगरा का राजा बलवंत सिंह कॉलेज, दिल्ली, पंतनगर और फिर दिल्ली में नौकरी–पूरा जीवन मानस पटल पर इस तरह आता जा रहा था, जैसे कोई फिल्म चल रही हो। एक-एक दृश्य 'थ्री-डी' फिल्मसा सजीव। बचपन से अब तक की पूरी जिंदगी अपनी समस्त विविधताओं और विषमताओं के साथ सामने से गुजर गयी। फिर कुछ दृश्य खंडों में चल पड़े। तभी होश आया, यह क्या हो रहा है ? आंख बंद कर के मन को हमने काम पर लगाया था कि नासिका के द्वारों पर टिक कर सांस का आना-जाना देखे, महसूस करे और जाने कि वर्तमान की यही सच्चाई है–सांस आ रही है, जा रही है। पहले तो सांस को जानने के लिए जोर-जोर से सांस ली। दो-चार बार गहरी सांसें ले कर फिर स्वाभाविक गति पर आ गये। नथुनों को स्पर्श करती हवा, पहले लगा, एक ही द्वार से प्रविष्ट हो रही है। फिर थोड़ा ध्यान जमा तो लगा कि नहीं, दोनों नासिका-द्वारों से आ-जा रही है। तभी गुरु जी का आदेश हुआ कि सांस के साथ-साथ मन को भी नासिका में अंदर ला कर जानो कि सांस कहां टकराती है, बाहर निकलते समय कहां स्पर्श करती है ! सचमुच ही पता चल रहा था। इसके बाद कहा गया कि सारा ध्यान ऊपरी होठ के ऊपर से ले कर पूरी नाक तक के तिकोने हिस्से में टिकाना है और इस भाग में जो भी संवेदना हो रही है, उसे जानना है। कहीं कोई चिनचिनाहट, कोई खुजलाहट, फुरफुरी, गरमी, ठंड, सांस का स्पर्श। फिर ध्यान का केंद्र और छोटा करके, केवल नासिक द्वारों से ले कर ऊपरी होंठ के ऊपर तक के छोटे त्रिकोण में सीमित कर दिया गया। तीन दिन तक यही अभ्यास चलता रहा।

नियमबद्ध दिनचर्या

पिछले वर्ष हम कोई डेढ़ सौ साधक-साधिकाएं 'विपश्यना' अभ्यास कर रहे थे। गुरू थे सत्यनारायण गोयनका। हिमालय की गोद में स्थित हिमाचल प्रदेश का मनोरम हिल स्टेशन–चइल। यहां का सरकारी पंचतारा होटल, जो कभी राजमहल हुआ करता था, की लॉबी का मुख्य द्वार बंद कर के साधना कक्ष में बदल दिया गया था। पूरा होटल केवल साधकों के लिए बुक था। आसपास होटल की कॉटेजें थीं। जमीन पर ही गद्द बिछा कर सोना। सुबह चार बजे जागने का सायरन बजता। फिर सादे चार बजे सायरन बजता, जिसका मतलब था, चाहो तो वहीं अपने-अपने स्थान पर घंटे भर ध्यान करो या फिर मुख्य साधना कक्ष में आ कर सामूहिक ध्यान में लग जाओ। उसके बाद नाश्ते में फल, दूध, चाय और कभी उपमा, उबली हुई अंकुरित दाल वगैरह मिलती। ८ से ९ बजे तक फिर ध्यान, जो घंटे-घंटे भर बाद पांच मिनट के विश्राम के बाद चलता। ११ बजे भोजन, फिर १ बजे सायरन गूंजता अर्थात ५ बजे तक घंटे-घंटे भर ध्यान। ५ बजे फल, दूध और चाय नये साधकों को; और पुराने साधकों को नींबू-पानी। बस यही डिनर था। शाम ६ बजे से ७ बजे तक साधना के बाद ९.३० बजे तक गुरू जी का प्रवचन और प्रश्नचर्चा। फिर सो जाना।

साधना के साथ ही आर्य मौन तथा ब्रह्मचर्य का पालन और धूम्रपान आदि कोई भी नशा नहीं करने का व्रत लिया गया। अद्भुत दृश्य था कि पति-पत्नी पास से गुजर रहे हैं, बिलकुल बेगाने से, जैसे एक-दूसरे को पहचानते ही नहीं। लगभग २५ विदेशी साधक-साधिकाएं भी पंचशील का पालन करते हुए अभ्यास में लगे थे। उनके लिए प्रवचन के समय अंग्रेजी के कैसेट अलग कक्ष में सुनवाये जाते। समाज के विविध वर्गों के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए थे – व्यापारी, सरकारी और गैर-सरकारी प्रतिष्ठानों के कर्मचारी, डॉक्टर, वकील, विद्यार्थी, पंडित, पादरी, संन्यासी। १५-१६ वर्ष के लड़के-लड़कियों से ले कर ७२ वर्ष के बूढ़ों तक सभी आयु वर्गों के लोग। कौन क्या है, यह तो विदा से पहले के दिन मौन टूटने पर ही पता चला, नहीं तो सब अपने आप में खोये रहते। पढ़ना-लिखना, रेडिओ, टी. वी., चिट्ठी-पत्री सब बंद। सारी दुनिया से कट कर आत्ममुखी रहना और साढ़े तीन हाथ की काया में घट रही संवेदनाओं की अनुभूति करना।

मन बार-बार भटकता। कभी बीते दिनों की सुख-दुख-भरी यादों में बहलाता, तो कभी भविष्य की चिंताओं से संतप्त करता, लेकिन ध्यान में लगने के बाद बड़ा हलकापन, बड़ी शीतलता मिलती। पहले दिन से ही परिवर्तन होने लगा। मन के दृश्य भी बदलते गये। एक दिन तो तीसरा विश्वयुद्ध सजीव रूप में सामने आने लगा। हर देश और हर जाति के लहूलुहान लोग-सफेद कपड़ों में लिपटे, कराहते-बिलखते। उनकी सेवा में लगे डॉक्टर और नर्स। परमाणु बम के विस्फोट से क्षत-विक्षत बच्चे और वृद्ध। एकबार तो लगा कि कहीं तीन दिन की साधना ने ही त्रिकालदर्शी तो नहीं बना दिया ! बाहर की दुनिया से बिलकुल बेखबर थे, सो लगा कि कहीं सचमुच तीसरा महायुद्ध तो नहीं छिड़ गया। कुछ देर मन में इन सजीव करुण दृश्यों को देखते-देखते ऊहापोह चलता रहा। तभी पास ही ध्यान में बैठे स्वामी इंद्रवेश जी ने मेरा घुटना छुआ और उनके हाथ ने हलके से थपथपाया, तो भान हुआ कि कहां बैठे हैं और क्या करना था ! 'आये थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास' वाली बात हो गयी थी।

तीन दिनों तक 'आनापान' यानी सांस का आना–जाना देखते रहने के अभ्यास के बाद, चौथे दिन गुरू जी का आदेश हुआ कि मन को सिर पर ले जा कर ठीक ब्रह्म-रंध्र के ऊपर जमाओ। मन बड़ा मगन, सिर जो चढ़ रहा था। कुछ देर में ही सिर के ऊपर चिनचिनाहट-सी लगी, अर्थात संकेत मिला कि मन वहाँ पहुंच गया। उसके बाद क्रमशः माथे पर से भौंह, आंख, नासिका, कपोल, कनपटी, होंठ, ठोडी, व गले से उतारते हुए वक्ष,

उदर, कटि-प्रदेश, जांघ और घुटनों से ले कर, पांव की अंगुलियों तक और फिर कन्धों से ले कर दोनों भुजाओं और हाथ की अंगुलियों तक और पूरी पीठ पर मन को घुमाना। घुमाते हुए जहां, जो भी संवेदना उठे, उसे केवल जानना, द्रष्टा भाव से, साक्षी भाव से, अनासक्त भाव से।

विश्वास नहीं हो रहा था कि मन हमारे कहे पर चलने लगा है। जिस अंग पर मन टिकाते, वहीं जैसे जाग उठता। प्रज्ञा जगाने का यह अभ्यास चलता रहा। इसी बीच न जाने कब, मन की वे लुभावनी और डरावनी दृश्यावलियां गायब हो गयीं। हां, शाम को ६ से ७ बजे की साधना के समय मन में विकल्प उठते, पर अब उनमें गुणात्मक परिवर्तन हो गया था, शुभ, कल्याणकारी और सर्जनात्मक। एक कविता, शिविर की अनुभूतियो पर बनने लगी-हलकी-फुलकी, हास्य-विनोद-भरी। कभी मन सोचता कि विपश्यना का सारे संसार में प्रसार हो जाये, तो धर्म के नाम पर हो रहे सभी अधर्म मिट जायें। सभी स्कूलों में विपश्यना का अभ्यास कराया जाये। नेता, व्यापारी, किसान, मजदूर सब-के-सब इस विद्या को सीख जायें। एक प्रयोगशाला बने, जिसमें विपश्यना करते समय मस्तिष्क और हृदय के 'ई. ई. जी.' और 'ई. सी. जी.' लेकर और खून की जांच कर के देखा जाये कि शरीर-क्रिया में क्या-क्या परिवर्तन हो रहे है?

और उस शाम का वह अनुभव तो शब्दों में बांधा ही नहीं जा सकता। अभ्यास करते-करते, सांस लेते समय, पांव से सिर तक और सांस बाहर निकालते समय सिर से पांव तक, मन धाराप्रवाह तरंगायित होने लगा था। एक ही आसन से बैठने के 'अधिष्ठान' में प्रायः पीड़ा होने लगती और गुरू जी के 'अनिच्च' शब्द से शुरू होनेवाले पाठ की ओर कान लगे रहते। इस पाठ के बाद वे तीन बार करुणा भरे शब्दों में 'भवतु सब्ब मंगलं' की गुहार लगाते और उसके बाद सभी साधक तीन बार 'साधु-साधु-साधु' कहते हुए प्रणाम की मुद्रा में झुकते और फिर परम सुखदायक शब्द सुनाई पड़ते – 'अब पांच मिनट विश्राम करें, विश्राम करें!'

लौकिक अनुभूतियों के पार

लेकिन उस दिन १ बजे से चल रहे अभ्यास के बाद भी अधिष्ठान में एक ही आसन पर जमे रहे साधक को कहीं कोई पीड़ा नहीं। पांच बज गये भोजन की घंटी बजी। आसपास के कुछ लोग उठे और चल पड़े, यह जाना। पर अपनी आंखें खोलने का मन ही न हो। कितनी ही सुखद स्थिति हो, 'अनित्य' कह कर उसकी उपेक्षा करनी थी, जिसका प्रयास भी किया, पर अद्‌भुत अनुभूति किसी तरह छूट ही नहीं रही थी। सारे शरीरमें वह अनुभूति धारा-प्रवाह बह रही थी, सिर से पांव तक, पांव से सिर तक। मन एक दिव्य आलोक से पुलकित। फिर लगा कि श्वास-प्रश्वास भी मैं नहीं ले रहा, कोई और ले रहा है। अब मैं चाहूँ तो भी जो कुछ घट रहा है, उसे रोक नहीं सकता। अनंत काल तक इस अवस्था में बैठा रह सकूंगा। फिर मन के एक कोने से विरोध हुआ कि नहीं इसे रोकना ही है। बड़े प्रयास से आंखे खोली। तेजी से चलती सांस सम गति पर आयी। मन आनंद के सागर में गोता लगाता मिला। पूरा हॉल खाली हो गया था। कहां तो पास के भोजन कक्ष से प्लेट-प्याले खनकते ही चौकन्ना हो जाता था कि अब सेब, संतरे, केले और मसालेवाली चाय मिलेगी और आज उठने का मन ही नहीं। उठ कर बाहर निकला तो सहायक मार्ग-दर्शक राम सिंह जी जैसे मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें अपना अनुभव बताया, तो प्रसन्न हुए और बोले, 'हां, ऐसा होने लगता है। बड़ा वैराग्य-भाव जागा। मन ने कहा, 'अब कहां लौटकर जाओगे रमेश, बस गुरू जी के साथ लग जाओ, विपश्यना के प्रचार में।' उस पारस स्पर्श ने जाने क्या कर दिया। बाद में गुरू जी को बताया और आंखों से कृतज्ञता के आंसू झरने लगे। वे समझाने लगे, यह जो भी है, इंद्रियजन्य है। इसको अनित्य ही मानो। जब इंद्रियातीत निरतिशय आनंद का स्पर्श होगा तब मेरे पास बताने नहीं आओगे।'

विज्ञान लिखते-लिखते किसी भी बात पर बिना आजमाये अपना विश्वास टिकता नहीं। नौ दिनों तक विपश्यना साधना की साधना आजमा कर देखी है। आज दृढ़ विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि चित्तशुद्धि का इतना सहज और कारगर साधन है विपश्यना कि उसके बिना मेरा यह मानव-जन्म भी अकारथ चला जाता। लगता है, नया जन्म हुआ है। नया जीवन मिला है। हम न जाने किन-किन कर्मकांडों में, पूजा-पाठ में, जप तप में तंत्र-मंत्र में लगे हुए, स्वयं को धर्मावलंबी माने बैठे हैं। धर्म के नाम पर आदमी को संप्रदायों में बांटते रहते हैं। इस सच्चे 'धम्म' का रस चखा, तो जैसे सारे भेद-भाव निकल गये। मन की आंखें खुल गयीं। अभी तक धर्म का आडंबर ओढ़े हुए थे। अब इसे जीवन में उतारने की दिशा मिली। जिनके भी मन में 'मैं कौन हूँ', 'मैं कहां से आया', 'क्यों आया' जैसे प्रश्न उठते हों, उन सबसे मैं कहूंगा कि आप भी विपश्यना को बस एक बार आजमाइए।

साधना के नौवें दिन, रात ढाई बजे मैंने यह पद लिखा।

विषय-विकार भरे मन को न भाये जरा,
थू-थू करे, कहे कटु नीम है विपश्यना।
गहरे न पैठे, रहे तट पर बैठे,
वे ही कहते फिरें ऐंठे कि अफीम है विपश्यना।
धर्म रस चखने के बाद ही पता चले कि
अद्‌भुत, अनंत और असीम है विपश्यना।
जनमों के जमे संस्कार काटने के लिए,
तपी हुई छेसर की बीम है विपश्यना।

गुरूजी को अर्पण करते हुए यह पद मैंने सुनाया, तो आखिरी पंक्ति तक आते-आते आंखें डबडबा आयीं।

(५ मई १९८५ धर्मयुग से साभार उद्‌धृत।)

● ● ●

विपश्यना डायरी

* हैदराबादसे सूचना मिली है कि "विपश्यना डायरी" वास्तविक मांगसे कुछ अधिक छपाई गयी है जो कि दिसंबर महीने तक भी बिक्री के लिए उपलब्ध रहेगी।
* डायरीकी साइज २०×३० सेंमी. यानी क्राउन साइज है।
* इसका लागत-खर्च कुछ अधिक होते हुए भी साधकों के लाभार्थ कीमत वही :

  सामान्य : (कार्डबोर्ड और रेग्जीन बाईन्ड) की रु. १५/- एवं

  डीलक्स : (फोम-कार्ड बोर्ड - रेग्जीन बाईन्ड) की रु. २०/- ही रखी गई है।
* जिन्हें १०० या इससे अधिक संख्यामें डायरी मंगानी हो, वे यदि चाहें तो उन्हें नमूने (सैम्पल) की डायरी भेजी जा सकेगी।

डायरी के लिए संपर्क व प्राप्ति-स्थान :

Shri. Birdhi Chandji Chaudhry
VIPASSANA RESEARCH INSTITUTE
Gandhi Darshan, Exibition Ground,
Mukramjahi Road, Hyderabad - 500 001.
Tel. off : 226268, Res. : 74338.

डॉ. विष्णुकुमार एस. कर्डक का देहावसान

दिनांक १८-८-८५ को अंधेरी, बम्बई के डॉ. विष्णुकुमार एम. कर्डक के श्रद्धांजलि कार्यक्रम में भाग लेने के लिए मैं भी गयी थी। उनकी लड़की मंगला कर्डक से मालूम हुआ की अंत समय में उनकी मुद्रा प्रसन्न थी। बड़ी शांति से उन्होंने शरीर छोड़ा। वे यूनियन बैंक ऑफ इंडिया के मॅनेजर थे और पवित्र धम्मगिरि पर साधना कर चुके थे। अंत समय में विपश्यना साधना ने काम किया।

- श्यामश्री संघमित्रा

मैसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-११० ००७.
की मंगल कामनाओं सहित

↓

दोहे धर्म के

शुद्ध धर्म का शांति पथ, सम्प्रदाय से दूर।
शुद्ध धर्म की साधना, मंगल से भरपूर ॥१॥
शुद्ध धर्म ऐसा जगे, होवे चित्त विशुद्ध।
बौद्ध बनें या न बनें, मानव बनें प्रबुद्ध ॥२॥
न यह तेरा पंथ है, न यह मेरा पंथ।
यह तो सब का पंथ है, सदाचार का पंथ ॥३॥
संकट सारे दूर हों, बाधाएं हट जांय।
दुखियारोंके दुख मिटें, शुद्ध धर्म जग जाय ॥४॥
जमे प्यार ही सर्वदा, रोम रोम लहराय।
धर्म गंग ऐसी बहे, द्वेष द्रोह धुल जाँय ॥५॥
धन्य हुआ जीवन, मिली शुद्ध धर्म की धार।
अब अपने पुरुषार्थ से, होंय दुखों के पार ॥६॥

दूहा धरम रा

दुखियारो संसार है, जन जन लियां बिकार।
सुद्ध धरम फिरसूं जगै, सुखी हुवै संसार ॥१॥
जन जन मँह जागै धरम, सुधरै जग व्यवहार।
बैर भाव सारा मिटै, र वै प्यार ही प्यार ॥२॥
सुद्ध धरम फिरसूं जगै, प्रग्या सील समाधि।
जनमन रा दुखड़ा मिटै, मिटज्या व्याधि उपाधि ॥३॥
सुख छा जावै जगत मँह, दुखिया र वै न कोय।
जन जन मँह जागै धरम, जन जन सुखिया होय ॥४॥
दुखियारां रो दुख मिटै, हुवै कलेस रो अंत।
सुद्ध धरम फिरसूं जगै, मंगल हुवै अनंत ॥५॥
प्यासो पावै धरम रस, इमरत को सी घूंट।
कंगलो पावै धरमधन, दुख जावै सब छूट ॥६॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३. दूरभाष : ८६
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक-४२२ ००७. टेलिफोन : ३०२५१ ● वार्षिक शुल्क रु. १०/-आजीवन शुल्क रु. १००/-

"विपश्यना" 9/85
पो. र. नं. MS(M) 10/85

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To